अजय सिंह

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

6 जून, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत और डी. के. जैन, जे. जे.]

साक्ष्य अधिनियम, 1872:

अतिरिक्त-न्यायिक संस्वीकृति-'संस्वीकृति' और 'कथन'- परस्पर अंतर- आरोपी को अपनी पत्नी की मृत्यु कारित करने के लिये अंतर्गत धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता में अभियोजित किया गया- गवाह ने आरोपी को यह कहते हुए सुना कि उसने अपनी पत्नी की मृत्यु कारित की थी- अभिनिर्णितः संस्वीकृति स्पष्ट, विशिष्ट और असंदिग्ध होनी चाहिए- तथ्यात्मक रूप से, अभियुक्त द्वारा संस्वीकृति करने का दावा करने वाले तीन पीडब्ल्यू के साक्ष्य में, अभियुक्त द्वारा कही गई भाषा में बहुत अंतर है-गवाहों के बयानों में असंगति है कि अभियुक्त द्वारा क्या कहा गया था- इसके अलावा, पी.डब्ल्यू. 01 अभियुक्त का विरोधी है और पी.डब्ल्यू. 03

उसकी पत्नी है- इसलिए, तथाकथित अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा- भारतीय दण्ड संहिता 1860 धारा 302.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: धारा 313- विचारणीय न्यायालय की अभियुक्त को परीक्षित करने की अधिकारिता- उद्देश्य- आरोपी की पत्नी की जलने से कारित चोटों के कारण मृत्यु-अभियोजन मामले में अभियुक्त के कपडों में मिट्टी का तेल होना पाया गया-धारा 313 के तहत परीक्षण के दौरान अभियुक्त से इस संबंध में कोई सवाल नहीं पूछा गया-अभिनिर्णितः अभियुक्त द्वारा ऐसे तथ्य को समझाने में विफलता जिसके सम्बंध में उससे कभी पूछा नहीं गया के आधार पर की गयी दोषसिद्धी कानून की दृष्टि में गलत है- अभियुक्त के खिलाफ उपयोग किए जाने वाले प्रत्येक तात्विक तथ्य के बारे में उससे पृथक से प्रश्न करना आवश्यक- भारतीय दण्ड संहिता, 1860- धारा 302.

अपीलार्थी-अभियुक्त पर उसकी पत्नी की हत्या का मुकदमा चलाया गया। अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि घटना की रात अपीलार्थी के पड़ोसियों ने उसे और उसकी पत्नी को झगड़ते हुए सुना और अपीलार्थी को अपनी पत्नी को घर के अंदर घसीटते हुए देखा। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपीलार्थी को अपने आवास से बाहर निकलते हुए देखा और चिल्लाते हुए सुना कि उसने अपनी पत्नी की मृत्यु कारित की है और उसे भागते हुए देखा। इसके बाद, पड़ोसियों ने अपीलार्थी के आवास में प्रवेश किया और

देखा कि उसकी पत्नी को आग लग गई थी। उन्होंने आग बुझाने की कोशिश की लेकिन, उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। पड़ोसियों में से एक पी.डब्लू. 01 ने प्राथमिकी दर्ज कराई थी। विचारणीय न्यायालय ने आरोपी को इस आधार पर आरोप का दोषी पाया कि पी.डब्लू. 01,02 और 03 के समक्ष अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति की गई थी; और उस पोशाक पर मिट्टी का तेल पाया गया था जो आरोपी ने घटना के समय पहनी थी। उच्च न्यायालय ने निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की।

अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से यह तर्क दिया गया था कि कोई अतिरिक्त संस्वीकृति नहीं की गयी है जैसा अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है। स्वीकृत तथ्य है कि पी. डब्ल्यू. 1 की अभियुक्त के साथ दुश्मनी थी और पी. डब्ल्यू. 1 की पत्नी पी. डब्ल्यू. 3 अपने पति का समर्थन करने के लिए बाध्य थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि अभियुक्त द्वारा संबोधित कथन उसके दूसरे पड़ोसियों के प्रति भी हो सकते हैं, न कि केवल पीडब्लू 1 के प्रति।

अपील स्वीकृत करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्णित कियाः

1.1. अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति के संबंध में विचार करते हुए, न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि संस्वीकृति स्वैच्छिक तथा बिना किसी दबाव के एवं अनुचित प्रभाव के की गयी हो। अतिरिक्त-न्यायिक संस्वीकृति दोषसिद्धि का आधार बन सकती है यदि वह ऐसे व्यक्ति के समक्ष की जाये

जिसके संबंध में यह प्रतीत कर दिया जाये की वह निष्पक्ष है और अभियुक्त से दूर तक कोई शत्रुता नहीं रखता। जहाँ शत्रुता दिखाने के लिए सामग्री है, उस स्थिति में न्यायालय को सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना होगा और यह पता लगाना होगा कि क्या किसी अन्य साक्ष्य की तरह संस्वीकृति भी गवाह की सच्चाई पर निर्भर करती है जिसके सामने यह किया गया है। [पैरा 7] [988-ए, बी]

1.2. संस्वीकृति स्पष्ट, विशिष्ट और असंदिग्ध होनी चाहिए। हस्तगत प्रकरण में पीडब्लू 1, 3 और 4 की साक्ष्य से यह सुसंगत नहीं है कि आरोपी ने कहाँ बयान दिया था। जबकि पीडब्लू-1 ने कहा कि वह घर के अंदर था, वहीं पीडब्लू-3 ने कहा कि आरोपी घर से बाहर नहीं आया और उसके बाद उसने ऐसा कोई बयान नहीं दिया जिसे अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति माना जाये। जहाँ तक पीडब्लू-1 का संबंध है, विचारणीय न्यायालय ने उसकी साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया है। इसके अलावा, इन तीन गवाहों के बयान में विसंगति है कि आरोपी ने क्या कहा था। इसलिए तथाकथित अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति पर कोई निर्भरता रखना सुरक्षित नहीं होगा। [पैरा 7] [988-ई, एफ, जी।]

साहको बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर (1966) एस सी 40: (1966) क्रिमिनल यू 68),- पर भरोसा किया।

2.1. जहाँ तक अभियोजन पक्ष का यह मानना है कि आरोपी के कपडों पर मिट्टी का तेल पाया गया था, का संबंध है, तो यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस संबंध में अभियुक्त को दंड संहिता, 1973 की धारा 313 के तहत परीक्षित करने के समय कोई प्रश्न इस बाबत् नहीं पूछा गया। इस धारा के तहत परीक्षा का उद्देश्य यह है कि अभियुक्त को उसके खिलाफ किए गए मामले को समझाने के लिये उसे पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। उसके बयान को उसकी बेगुनाही या दोषसिद्घी का निर्णय करने के लिये विचार में लिया जा सकता है। जहां आरोपमुक्त करने बाबत् जिम्मेदारी अभियुक्त पर हो, वहां यह प्रकरण के तथ्यों व परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि क्या ऐसे कथन द्वारा उक्त जिम्मेदारी का निर्वहन किया गया है। पैरा 9 और 11] [989-जी; 990-सी]

हेत सिंह, भगत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर AIR (1953) एस सी 468, पर भरोसा किया।

2.2. अभियुक्त द्वारा किसी तथ्य को समझाने में विफलता, जिसके संबंध में उससे कुछ पूछा नहीं गया हो, के आधार पर पारित दोषसिद्घी कानून की दृष्टि में न्यायोचित नहीं। धारा 313 को अधिनियमित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि अभियुक्त का ध्यान आरोप व साक्ष्य में इंगित

विशिष्ट बिन्दुओं की ओर खींचना है जिन पर अभियोजन यह मानता है कि अभियुक्त के विरूद्घ मामला बनना पाया जाता है, ताकि उसे स्पष्टीकरण, जो वह पेश करना चाहता है, को प्रस्तुत करने का मौका मिले। यह उचित नहीं है कि तथ्यों की एक लंबी श्रृंखला बनाकर अभियुक्त से यह पूछा जाये कि उसे उनके बारे में क्या कहना है। उससे प्रत्येक तात्विक तथ्य जो उसके विरूद्घ इस्तेमाल में लाये जाने का आशय है के बारे में पृथक से पूछताछ करनी चाहिए। [पैरा 12 और 13] [990-एफ, जीजे]

3. अभियोजन पक्ष आरोपों को प्रमाणित करने में विफल रहा है। दोषसिद्घी अपास्त की जाती है। [पैरा 14] [991-बी।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार आपराधिक अपील सं. 829/2007

बॉम्बे उच्च न्यायालय, नागपुर पीठ, नागपुर के 24.4.2006 दिनांकित निर्णय और आदेश जो सीआरएल. अपील सं. 80/1996 में पारित।

ए. के. संघी और गगन संघी (रामेश्वर प्रसाद गोयल के लिए) अपीलार्थी की ओर से। अजय राय (आर. के. एडश्योर के लिए) प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय जिनके द्वारा दिया गया

डॉ. अरिजीत पासायत, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इस अपील में डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई है।

बॉम्बे उच्च न्यायालय की नागपुर पीठ ने अपीलार्थी द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया। अपीलार्थी पर भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में आई. पी. सी.) की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के कथित अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया। उसे नागपुर के प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास और Rs.200/- के जुर्माने सहित डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ दण्डित किया गया। फैसले के खिलाफ दायर अपील, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, खारिज कर दी गई थी।

3. विचारण के दौरान अभियोजन संस्करण इस प्रकार हैः अपीलार्थी-अभियुक्त पर उसकी पत्नी श्रीमती लता बाई (जिसे आगे 'मृतक' के रूप में संबोधित किया जायेगा) की, दिनांक 29-04-2003 की रात्रि समय करीब 1.30 ए.एम. पर रघुजीनगर, सकरदारा, नागपुर में स्थित पुलिस क्वाटर संख्या 203/03 में, मिट्टी का तेल डालकर आग लगाकर मृत्यु कारित करने के आरोप का मुकदमा चलाया गया था। अपीलार्थी-अभियुक्त अपनी पत्नी-

मृतक और बच्चों के साथ उक्त क्वार्टर में रह रहा था। उस दुर्भाग्यपूर्ण रात को जब पड़ोसी निवासी, ज्यादातर पुलिस कर्मी अपने-अपने क्वार्टर में थे और आंगन में सोए हुए थे, उन्होंने रात में लगभग 1:30 बजे टेप रिकॉर्डर की आवाज़ सुनी, जिसे अपीलार्थी-आरोपी द्वारा बजाया जा रहा था, जिसकी आवाज ने उन्हें जगा दिया। उन्होंने अपीलार्थी-अभियुक्त और उसकी पत्नी को झगड़ते हुए सुना और अपीलार्थी-अभियुक्त को मृतक का हाथ पकड़कर घर के अंदर घसीटते हुए देखा और थोड़ी देर बाद उन्होंने अपीलार्थी-अभियुक्त को अपने आवास से बाहर आते और "काका लता मेरे हाथों से मारी गयी" चिल्लाते हुए देखा और वह भाग गया। इसके बाद, पड़ोसियों ने अपीलार्थी-अभियुक्त के आवास में प्रवेश किया और देखा कि लता को आग लग गई थी। उन्होंने आग बुझाने की कोशिश की, लेकिन अस्पताल ले जाने से पहले ही वह अत्यधिक जल गई थी, जिससे उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। इस घटना के कारण, पड़ोस के सभी लोग घटना स्थल पर जमा हो गए थे और मामले में पुलिस कांस्टेबल कृष्ण सदाशिव ल्यूट (पीडब्लू 1) द्वारा पुलिस स्टेशन सक्कारदरा में शिकायत (प्रदर्श 80) दर्ज कराई गई। उक्त रिपोर्ट को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 154 के तहत निर्धारित प्रोफार्मा में पी. एस. आई. काले (पी. डब्ल्यू. 11) द्वारा काटी गयी जो प्रदर्श 19 है। पी. एस. आई. काले ने सक्कारदरा पुलिस स्टेशन के अपराध संख्या 192/93 के माध्यम से आई. पी. सी. की धारा 302 के तहत अपराध दर्ज किया। इसके बाद उन्होंने

घटना स्थल का दौरा किया और मौके पर पंचों की उपस्थिति में पंचनामा तैयार किया जो प्रदर्श 40 है। उसने देखा कि मृत लता पूरी तरह से जल गई थी और उसकी गर्दन उसके पेट की ओर फैली हुई थी और उसके हाथ झुक रहे थे, उसके दोनों पैर पेट की ओर खींचे हुए थे। उसने उसके निजी अंग पर आंशिक रूप से जले हुए पदार्थ भी देखे जो थोड़ा गीला था। रसोईघर में, उन्होंने देखा कि एक टिन था, जिसमें कुछ मिट्टी का तेल था, माचिस की छड़ें और अन्य पदार्थ थे जिसे उसने मौके पर बनाये पंचनामे में अंकित किया और आर्टिकल 1 से 7 को जप्त किया। पी.एस.आई. लक्ष्मण तिगारा ने दिनांक 29-04-1993 को अनुसंधान अपने हाथ में लिया। उसने अपीलार्थी-अभियुक्त को करीब 7 पी.एम. पर गिरफ्तार किया जो तुक्कडोजी महाराज के पुतले के पास मिला तथा फर्द गिरफ्तारी बनायी और उसके कपडों को जप्त किया। अपीलार्थी-अभियुक्त को ड़ाक्टरी मुआयने हेतु मेडिकल ऑफिसर के समक्ष ले जाया गया। अनुसंधान के दौरान मृतक लताबाई के मृत शरीर का पंचनामा (प्रदर्श 22) बनाया गया एवं मृतक के शव को पोस्टमार्टम करने हेतु डिपार्टमेंट ऑफ फोरेंसिक मेडिसिन, मैडिकल कॉलेज नागुपर भेजा गया। मैडिकल ऑफिसर द्वारा पोस्टमार्टम किया गया एवं रिपोर्ट (प्रदर्श 31) बनायी गयी, जो अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा स्वीकार की गयी तथा इसी कारण अभियोजन पक्ष द्वारा मैडिकल ऑफिसर को परीक्षित नहीं कराया गया हैं। पुलिस द्वारा रसायनिक विश्लेषक के समक्ष अनुसंधान के दौरान जप्त की गयी वस्तुओं

को भेजने संबंधी औपचारिक्ताऐ पूर्ण करने के अतिरिक्त गवाहों के बयान लेखबद्घ किये गये। जाँच पूरी होने के बाद, अपीलार्थी-अभियुक्त के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया। उनका मामला सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय को सौंपा गया था। जैसे ही आरोपी ने खुद को निर्दोष बताया, उस पर मुकदमा चलाया गया।

4. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को मुख्य रूप से दो आधारों पर दोषी पाया; (ए) पीडब्लू 1,3 और 4 के समक्ष अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति की गई थी; (बी) घटना के समय अभियुक्त द्वारा पहनी गई पोशाक पर मिट्टी का तेल पाया गया था। इन दो पहलुओं पर भरोसा करते हुए, विचारणीय न्यायालय ने आरोपी को दोषी पाया। उच्च न्यायालय ने निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की।

5. अपील के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि कोई अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति नहीं थी जैसा कि दावा किया गया था। यह स्वीकृत तथ्य है कि पीडब्लू-1 की आरोपी के साथ दुश्मनी थी क्योंकि उक्त गवाह आरोपी के बाथरूम में झाँकता था जब आरोपी की पत्नी-मृतक नहाती थी। इस पहलू को न केवल पीडब्लू-1 बल्कि पीडब्लू-3 ने भी स्वीकार किया है। बाद वाला पीडब्लू-1 की पत्नी होने के नाते पीडब्लू-1 के कथन का समर्थन करने के लिए बाध्य थी। जैसा कहा गया है कि आरोपी ने जिस भाषा में बात की है, उसमें बहुत अंतर है। पीडब्लू 1

और 3 ने स्वीकार किया है कि अभियुक्त द्वारा "काकाजी" के प्रति कथनों को संबोधित किया था और इससे यह संदर्भ नहीं है कि अभियुक्त ने उक्त संबोधन केवल पीडब्लू-1 के लिए किया हो, बल्कि अभियुक्त के एक अन्य पड़ोसी के लिए भी हो सकता है। एफ. एस. एल. रिपोर्ट देने वाले अधिकारी से गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जाहिर किया है कि विचारणीय न्यायालय और उच्च न्यायालय ने सबूतों की विस्तार से जांच की है और आरोपी के अपराध के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।

7. हम सबसे पहले अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति के दावे के संबंध में प्रश्न पर विचार करेंगे। हालाँकि यह आवश्यक नहीं है कि गवाह शब्दशः वही बताये परन्तु महत्वपूर्ण और भौतिक अंतर नहीं होने चाहिए हैं। अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति के रुख पर विचार करते समय, न्यायालय को यह संतुष्ट करना होगा कि यह स्वैच्छिक था और बिना किसी दबाव और अनुचित प्रभाव के था। अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति दोषसिद्धि का आधार बन सकती है यदि व्यक्ति जिनके समक्ष वह की जाये निष्पक्ष प्रतीत होते हो और अभियुक्त से दूर-दूर तक कोई दुश्मनी नहीं रखते हो। जहाँ दुश्मनी दिखाने के लिए सामग्री है, वहाँ अदालत को सावधानी से आगे बढ़ना होगा और यह पता लगाना होगा कि क्या संस्वीकृति किसी अन्य सबूत की तरह गवाहों की सच्चाई पर निर्भर करती है जिनके समक्ष वह

की जाये। यह अपरिवर्तनीय नहीं है कि न्यायालय को ऐसे साक्ष्य को स्वीकार नहीं करना चाहिए यदि बोले जाने का दावा किए गए वास्तविक शब्दों को हुबहु प्रस्तुत नहीं किया जाता है और शब्दों का केवल सार दिया जाता है। यह मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यदि तथ्य स्वयं दोष साबित करने के लिए पर्याप्त है और अभियुक्त द्वारा दिए गए बयान के महत्व के बारे में कोई अस्पष्टता नहीं है, तो साक्ष्य पर कार्रवाई की जा सकती है, भले ही सार और वास्तविक शब्द नहीं बताए गए हों। मानव मस्तिष्क एक टेप रिकॉर्डर नहीं है जो शब्द-दर-शब्द जो कहा गया है उसे रिकॉर्ड करता है। गवाह को अभियुक्त द्वारा बोले गए वास्तविक शब्दों को यथासंभव कहने में सक्षम होना चाहिए। यह किसी भी अस्पष्ट कथन की गलत व्याख्या की संभावना को खारिज कर देगा। यदि मामले के बयान की शब्द-दर-शब्द पुनरावृत्ति पर जोर दिया जाता है, तो अक्सर अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति के प्रमाणिक मूल्य को अविश्वसनीय और उपयोगी नहीं माना जाता है। यह कानून की आवश्यकता नहीं हो सकती है। कुछ ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जिनके पास अच्छी स्मृति है और वे सटीक शब्दों को फिर से पोस्ट करने में सक्षम हो सकते हैं और ऐसे कई व्यक्ति हो सकते हैं जिनके पास सामान्य स्मृति है और वे ऐसा कर सकते हैं। यह न्यायालय पर है कि वह गवाह की क्षमता की विश्वसनीयता का न्याय करे और उसके बाद यह तय करें कि उसके साक्ष्य को स्वीकार किया जाना है या नहीं। यदि अदालत को विश्वास है कि जिन गवाहों के सामने संस्वीकृति की गई

है और वह संतुष्ट है कि संस्वीकृति ऐसे साक्ष्य के आधार पर स्वैच्छिक थी, तो दोषसिद्धि स्थापित की जा सकती है। इस तरह संस्वीकृति स्पष्ट, विशिष्ट और असंदिग्ध होनी चाहिए। पीडब्लू 1,3 और 4 की साक्ष्य इस बात के अनुरूप नहीं हैं कि अभियुक्त ने कहाँ कथन किया था। जबकि पीडब्लू-1 ने कहा है कि वह घर के अंदर था, दिलचस्प रूप से पीडब्लू-3 ने कहा कि आरोपी घर से बाहर नहीं आया और उसके बाद उसने कोई बयान नहीं दिया जिसे अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति माना गया है। जहाँ तक पीडब्लू-4 का संबंध है, विचारणीय न्यायालय ने उसके साक्ष्य पर अविश्वास किया था, उच्च न्यायालय ने उसे विश्वसनीय पाया। महत्वपूर्ण रूप से, उसने कहा कि आरोपी उनके आंगन के पास आया और "काकाजी दौडो लता जल गई" चिल्लाया। इसके विपरीत, पीडब्लू-1 ने कहा कि "काकाजी लता मर गयी मेरे हाथ से"। इसके विपरीत पीडब्लू-3 ने कहा "काकाजी मेरे हाथ से लता जल गई"। इसलिए, तथाकथित अतिरिक्त न्यायिक संस्वीकृति पर कोई भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा।

8. 'संस्वीकृति' शब्द को साक्ष्य अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है। ' 'संस्वीकृति' अभियुक्त द्वारा दिया गया एक बयान है जिसे अपराध के संदंर्भ में या तो स्वीकार करना चाहिए या कम से कम उन सभी तथ्य जो अपराध का गठन करते हैं के संदंर्भ मे। 'कथन' शब्द का शब्दकोश अर्थ है "कहने का कार्य; जो कहा गया है; एक औपचारिक

विवरण, तथ्यों की घोषणा आदि।" 'कथन' शब्द में मौखिक और लिखित कथन दोनों शामिल हैं। हालाँकि, एक 'कथन' का गठन करने के लिए दूसरे के साथ संचार एक आवश्यक घटक नहीं है। यह हो सकता है कि किसी अभियुक्त को खुद से बोलते हुए या अपनी पत्नी या किसी अन्य व्यक्ति को विश्वास में यह कहते हुए सुना गया हो। यह भी हो सकता है कि उसने आत्मभाषण में खुद से ही कुछ कहा हो। वह लिखित में एक नोट भी रख सकता है। फिर भी उपरोक्त सभी एक 'कथन' का गठन करते हैं। यदि इस तरह का एक बयान अपराध की स्वीकृति है, तो यह एक संस्वीकृति कहलायेगा चाहे इसे दूसरे को सूचित किया गया है या नहीं। यह सवाल इस न्यायालय के समक्ष साहू बनाम यू.पी. राज्य, AIR (1966) S.C. 40: (1966 CRL U 68) में विचारार्थ उत्पन्न हुआ। "साक्ष्य की विधि" पर प्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखे गए कुछ अंशों का उल्लेख करने के बाद, सुब्बा राव, जे. (तत्समय) ने अभिनिर्णित किया कि " संस्वीकृति का गठन करने के लिये संचार एक आवश्यक घटक नहीं है"। निर्णय के पैराग्राफ 5 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्णित कियाः

> "स्वीकारोक्ति और संस्वीकृति सुनी-सुनाई बातों के नियम के अपवाद हैं। साक्ष्य अधिनियम उन्हें प्रासंगिक साक्ष्य की श्रेणी में रखता है। संभवतः इस आधार पर कि वह ऐसी घोषनाएं है जो करने वाले व्यक्ति के हितों के

खिलाफ है, संभवतः वह सच हैं। स्वीकारोक्ति या संस्वीकृति का संभावित मूल्य इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह दूसरे को व्यक्त की गयी है, हालांकि, किसी अन्य साक्ष्य की तरह, इन्हें प्रमाणित करने के उपरान्त ही साक्ष्य में ग्राह्य किया जा सकता है। ऐसा प्रमाण मौखिक स्वीकृति एवं संस्वीकृति के मामले में ऐसे साक्षी द्वारा ही दिया जा सकता है जिसने ऐसी स्वीकृति या संस्वीकृति को सुना हो जैसा कि हो सकता है.... यदि, जैसा कि हमने कहा है, 'कथन' वंश है और संस्वीकृति केवल उस वंश की एक उप-प्रजाति, हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि क्यों संस्वीकृति में निहित बयान को अलग अर्थ दिया जाना चाहिए। इसलिए, हम मानते हैं कि एक बयान, चाहे संप्रेषित किया गया हो या नहीं, अपराध स्वीकार करना अपराध की संस्वीकृति है।" (जोर दिया गया)

9. जहाँ तक अभियोजन पक्ष का मामला है कि अभियुक्त के कपडों पर मिट्टी का तेल पाया गया था, तो यह ध्यान देने योग्य है कि इस संबंध में अभियुक्त से कोई सवाल नहीं उठाया गया था जब उससे संहिता की धारा 313 के तहत पूछताछ की गई थी।

10. संहिता की धारा 313 का उद्देश्य इसके उद्घाटन शब्दों में निर्धारित किया गया है- 'अभियुक्त को उसके खिलाफ साक्ष्य में आने वाली किसी भी परिस्थिति की व्याख्या करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से।' हेत सिंह, भगत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य AIR(1953) S.C. 468 में बोस. जे. ने यह अभिनिर्णित किया है कि संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज अभियुक्त के कथन 'विचारण के दौरान विचार किए जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से हैं।' यह इंगित किया गया था कि आरोपी के कथन जिन्हें मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए है उनका स्थान भारत में वही है जो इंग्लैंड और अमेरिका में जो वह बतौर गवाह अपने तरीके से कहने के लिए स्वतंत्र होगा और उन्हें विचारण के दौरान साक्ष्य के रूप में ग्राह्य किया जाना चाहिए और साक्ष्य के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। संहिता में धारा 315 को शामिल करने के बाद भी यह स्थिति अपरिवर्तित रहती है और धारा 313 के तहत किसी भी कथन पर उसी तरह से विचार किया जाना चाहिए जैसे कि धारा 315 अस्तित्व में नहीं है।

11. इस धारा के तहत जाँच का उद्देश्य अभियुक्त को उसके खिलाफ किए गए मामले को समझाने का अवसर दिये जाने से है। इस कथन को उसकी बेगुनाही या दोषसिद्घी का न्याय करने में ध्यान में रखा जा सकता है। जहाँ अभियुक्त पर निर्वहन का दायित्व है, तो यह मामले के

तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि ऐसा कथन दायित्व निर्वहन करता है अथवा नहीं।

12. उप-धारा (1) (बी) में 'साधारणतया' शब्द मामले से संबंधित सामान्य प्रकृति के एक या अधिक प्रश्नों से पूछताछ करने की प्रकृति को सीमित नहीं करता है, लेकिन इसका अर्थ है कि प्रश्न आम तौर पर पूरे मामले से संबंधित होना चाहिए और इसके किसी विशेष भाग या भाग तक ही सीमित होना चाहिए। प्रश्न को इस तरह से पूछा जाना चाहिए ताकि अभियुक्त को यह पता चल सके कि उसे क्या समझाना है, कौन सी परिस्थितियाँ उसके खिलाफ हैं और जिसके लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस धारा का मूल उद्देश्य अभियुक्त को उन परिस्थितियों को समझाने का एक सही और उचित अवसर प्रदान करना है जो उसके खिलाफ दिखाई देती हैं और यह कि प्रश्न निष्पक्ष होने चाहिए और ऐसे रूप में रखे जाने चाहिए जिसे एक अज्ञानी या अनपढ़ व्यक्ति समझने और परखने में सक्षम हो। जिस बात की व्याख्या करने के लिए उसे कभी नहीं कहा गया था, उसे समझाने में अभियुक्त की विफलता के आधार पर दोषसिद्धि कानूनी रूप से गलत है। संहिता की धारा 313 को अधिनियमित करने का पूरा उद्देश्य यह था कि अभियुक्त का ध्यान आरोप के विशिष्ट बिंदुओं और उन साक्ष्यों की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए जिन पर

अभियोजन पक्ष दावा करता है कि अभियुक्त के खिलाफ मामला बनना पाया गया है ताकि वह ऐसा स्पष्टीकरण दे सके जो वह देना चाहता है।

13. संहिता की धारा 313 के प्रावधानों को ईमानदारी से और निष्पक्ष रूप से पालन करने के महत्व पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। यह उचित नहीं है कि तथ्यों की एक लंबी श्रृंखला बनाकर अभियुक्त से यह पूछा जाये कि उसे उनके बारे में क्या कहना है। उससे प्रत्येक तात्विक तथ्य जो उसके विरूद्घ इस्तेमाल में लाये जाने का आशय है के बारे में पृथक से पूछताछ करनी चाहिए। पूछताछ निष्पक्ष होनी चाहिए और ऐसे रूप में की जानी चाहिए जिसे एक अज्ञानी या अनपढ़ व्यक्ति व्याख्या करने और समझने में सक्षम हो। यहां तक कि जब कोई आरोपी अनपढ़ नहीं होता है, और जब वह हत्या के आरोप का सामना कर रहा होता है तो उसका दिमागी रूप से परेशान होना संभाव्य है। इसलिए निष्पक्षता हेतु यह आवश्यक है कि प्रत्येक भौतिक परिस्थिति को सरल और अलग तरीके से इस तरह से रखा जाना चाहिए कि एक अनपढ़ मन, या जो परेशान या भ्रमित है, आसानी से समझ और अवलोकन कर सके।

14. उपयुर्क्त स्थिति के मध्यनजर अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अभियोजन पक्ष आरोपों को स्थापित करने में विफल रहा है। दोषसिद्धि को दरकिनार किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है। यदि किसी अन्य मामले में आवश्यकता न हो तो अपीलार्थी को तुरंत रिहा कर दिया जाए।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अजय कुमार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।